तिथि–10 अप्रैल 2022
सृष्टि संवत्- १, ९६, ०८, ५३, १२३
युगाब्द-५१२३, अंक-१४९, वर्ष-१५
चैत्र विक्रमी २०७९ (अप्रैल 2022)
मुख्य संपादक : हनुमत्प्रसाद 'अथर्ववेदाचार्य'
कार्यकारी संपादक : आचार्य सतीश
सम्पर्क सूत्र: 9350945482
Web: www.aryanirmatrisabha.com
E-mail : krinvantovishwaryam@gmail.com

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा

ऋषि दयानन्द

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

(राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा का मासिक विचार पत्र)

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः। भग प्र नो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ –यजु:० ३४। ३६

व्याख्यान–हे भगवान परमैश्वर्यवन्! (भग) ऐश्वर्य के दाता संसार वा परमार्थ में आप ही हो। तथा (भग प्रणेत:) आपके ही स्वाधीन सकल ऐश्वर्य है, अन्य किसी के अधीन नहीं। आप जिसको चाहो उसको ऐश्वर्य देओ। सो आप कृपा से हम लोगों का दारिद्र्य छेदन करके हमको परमैश्वर्यवाले करें, क्योंकि ऐश्वर्य के प्रेरक आप ही हो। हे भगवन्! (सत्यराध:) सत्यैश्वर्य की सिद्धि करनेवाले आप ही हो, सो आप नित्य ऐश्वर्य हम को दीजिए। [तथा] जो मोक्ष कहलाता है, उस सत्य ऐश्वर्य का दाता आपसे भिन्न कोई नहीं है। [(भगेमां धियं ददन्:)] हे सत्यभग! पूर्ण ऐश्वर्य सर्वोत्तम बुद्धि हम को आप दीजिए। जिस से हम लोग आप, आपके गुण और आपकी आज्ञा का अनुष्ठान ज्ञान इनको यथावत् प्राप्त हों। सो हमको सत्यबुद्धि सत्यकर्म और सत्यगुणों को (उदव) उद्गमय=प्रापय=प्राप्त कर। जिससे हम लोग सूक्ष्म से भी सूक्ष्म पदार्थों को यथावत् जानें। (भग प्र नो जनय) हे सर्वैश्वर्योत्पादक! हमारे लिए भग=ऐश्वर्य को अच्छी प्रकार से उत्पन्न कर। [(गोभिरश्वै:)] सर्वोत्तम गाय घोड़े और मनुष्य इनसे सहित

सम्पादकीय

कश्मीर फाइल ...

वर्त्तमान में सम्पूर्ण संसारभर में चलचित्र (फिल्म) मानव जीवन में परिवर्तन का एक सशक्त माध्यम बनकर स्थापित हो चुका है, जिसका परिणाम हम सभी समाजिक जीवन में नित्य प्रति अनुभव करते ही रहते हैं। हमारे देश में अनेक विधाओं की फिल्में बनायी जाती रही हैं, जिनमें से अधिकांश काल्पनिक होते हुए संस्कारों से विहीन भोग-विलासमय जीवन का ही सन्देश देती है। कुछ फिल्में ऐतिहासिक होते हुए भी काल्पनिक पुट दिए बिना नहीं बनायी जाती हैं, और कुछ तो ऐतिहासिक पात्रों अथवा घटनाओं की पृष्ठभूमि पर कोरी कल्पना परोस दी जाती है। किन्तु वर्त्तमान में जो सर्वाधिक चर्चा का विषय सम्पूर्ण देश में बनी हुई है, वह फिल्म है- 'कश्मीर फाइल' इस फिल्म में जो कुछ दिखाया गया है, यह कटु सत्य होते हुए भी कश्मीर की अनेक फाइलों में से मात्र एक फाइल है। अर्थात् सत्य यह है कि- ऐसी-ऐसी 'कश्मीर फाइल' कई और भी बनायी जा सकती हैं। किन्तु प्रश्न फिर खड़ा होता है कि क्या मात्र कश्मीर में ही ऐसी षड्यन्त्रपूर्ण क्रूर घटनाएं घटायी गयीं? तब इसका उत्तर है- नहीं।

बन्धुओं! भगिनियों! सम्पूर्णधरा के स्वर्ग सुजला-सुफला शस्य श्यामला सर्वश्रेष्ठ अर्थात् आर्यों से ओत-प्रोत इस हमारी मातृभूमि, पितृभूमि, जन्मभूमि और कर्मभूमि आर्यावर्त्त पर जब से विदेशी वहशी, अमानवीय, अत्याचारी आक्रान्ताओं के आक्रमण हुए हैं तब से ऐसे-ऐसे नृशंस, क्रूर अत्याचारों की एक लम्बी श्रृखंला चली आ रही है, जो आज भी निरन्तर और निर्बाध जारी है, और जारी रहेगी। कब तक जारी रहेगी? इसका उत्तर है- तब तक जारी रहेगी जब तक हम सभी सनातन धर्मी इन क्रूरतापूर्ण अत्याचारों का गम्भीरता के साथ विवेकपूर्ण विचार करके, समाधान खोजकर, दृढ़ता पूर्वक उस समाधान को व्यापक रूप से सम्पूर्ण देश में लागू नहीं कर लेते। जब तक मानव कौन? और दानव कौन? यह परिभाषा स्पष्ट नहीं कर लेते। जब तक हम दानव को भी मानव और मानव को भी दानव जैसा मानते रहेंगे, दानवों से मानवता पूर्ण व्यवहार की कोरी झूठी मायावी कल्पना में डूबे रहेंगे। तक तक यह मजहबी उन्माद, जेहाद, आतंक न रूकेगा, न थमेगा न ही

शेष अगले पृष्ठ पर ....

पिछले पृष्ठ का शेष .... समाप्त होगा। और हमारा दुर्भाग्य यह है कि हम लाखों की संख्या में असुर नाशिनी, त्रिशूलादि शस्त्रधारिणी, शक्तिशालिनी देवी के नवरात्रों में भूखें रहकर, आंखें बन्द करके पूजा करने में व्यस्त हैं, जिसकी कथा में बताया गया है कि उसने मायावी राक्षसों का वध माया रूपणी बनकर किया, अर्थात् जिसने जैसी विधि से आक्रमण किया, जैसी विधि से अत्याचार किया, देवी ने वैसा ही प्रत्याक्रमण किया, वैसा ही दण्ड दिया। वर्ष में दो-दो बार इन कथाओं को सुनना, घण्टी घडियाल बजाना और फिर किसी राक्षसी सत्ता के अत्याचार का आक्रमण का शिकार बन जाना और फिर उस अत्याचार-आक्रमण की कथा को कथा बनाकर बेचने लग जाना, उपन्यास बनाकर, काव्य बनाकर तथा फिल्म बनाकर व्यापार करने लग जाना, किन्तु सीखना कुछ नहीं, अपनाना कुछ नहीं।

आइए! तनिक सोचिए। कश्मीर घाटी को जहां से लगभग पांच से सात लाख हिन्दुओं का पलायन हुआ है वर्तमान में भी कुल जनसंख्या 1 करोड़ 28 लाख के लगभग है, जो कि 1990 ई. में 1 करोड़ से कुछ अधिक रही होगी अर्थात् पलायन करने वाली जनसंख्या कुल जनसंख्या का लगभग पांचवा हिस्सा तो थी। और इतनी जनसंख्या होते हुए भी हमने कोई प्रतीकार नहीं किया? चलिए वहां आतंक था, अत्याचार था, क्रूरता थी, आतंकवादियों के पास ए.के. सैंतालीस जैसे आधुनिक हथियार थे, विपरीत परिस्थितियों में हमने पलायन कर लिया, किन्तु पलायन के उपरान्त क्या हम जम्मू खाली नहीं करवा सकते थे? क्या हम अहिंसात्मक आन्दोलन करके दिल्ली की संसद नहीं घेर सकते थे? क्या घाटी में 5 से 7 लाख लोगों में से किसी ने भी कोई उल्लेखनीय प्रतिकार किया? नहीं। और अब हम क्या कर रहे हैं? यह पलायन का अकल्पनीय दु:ख झेलने वाले 5 से 7 लाख लोग इस विषय पर क्या सोच रहे हैं? हमारी सरकार की क्या योजना है घर वापसी के सम्बन्ध में? यह सब अनिश्चित है, और अनिश्चित ही रहेगा। जब तक हम स्वयं नहीं खडे होंगे, तब तक कोई सरकार कुछ नहीं करेगी। मात्र हजार वर्षों की गुलामी के काल में हमारी मानसिकता कठिनाइयों से पलायन करने की हो चुकी है, इस पलायनवादी मानसिकता के कारण ही अफगानिस्तान गया, पाकिस्तान गया, बांग्लादेश गया, कश्मीर खाली हो गया, बंगाल, असम एवं केरल जैसे राज्य खतरे में हैं तथा उत्तर प्रदेश और बिहार का जनसंख्या असन्तुलन भविष्य के लिए भयानक भयावह बनकर हमारे सम्मुख खड़ा है। ऐसी भीषण परिस्थिति में हमें यह 'कश्मीर फाइल' फिल्म जो सबसे बड़ी सीख देती है, वह है कि पलायनवाद छोड़ना होगा, संघर्ष के बिना न जीवन बचता है, न घर-परिवार, न समाज और न ही राज्य बचता है। सरकारें उसी के साथ खड़ी होती हैं, अथवा मौन सहमति देती हैं, जो संघर्ष के लिए आगे बढ़ता है। हम सभी को चाहिए कि इतिहास से सीख लें! भविष्य के बारे में विचार करें! जो आपदाएं हमारे सामने निश्चित ही आने वाली हैं, उनका निदान, समाधान खोज लें, उनके समाधान की तैयारी कर लें। तभी हम सुरक्षित होंगे, हमारी भावी पीढ़ियाँ सुरक्षित होंगी। अन्यथा हमारे जीवन पर भी कोई फिल्म बनेगी और देखने वाले लोगों की आंखों में सिर्फ और सिर्फ आंसू होंगे।

-आचार्य हनुमत् प्रसाद, अध्यक्ष, आर्य महासंघ

आर्य कौन ?

– वेद आर्य, गुरुग्राम

जब से सृष्टि का निर्माण हुआ तभी से आर्य जाति है क्योंकि आर्य नाम 'श्रेष्ठ' का है। ऋषि दयानन्द ने भी सत्यार्थ प्रकाश में इसका उल्लेख किया है। ये आर्य जाति वैदिक सिद्धान्तों को मानने वाली थी। 'वेद मूल ग्रन्थ थे जिनका पठन-पाठन तथा आचरण आर्य द्वारा किया जाता था। जो जन वेद के सिद्धान्तों को न मानने, न जानने या आचरण न करने वाले थे। उन्हें ही अनार्य या दस्यु कहा जाता था। आज तक भी 'आर्य' की यही परिभाषा है। दूसरा आर्यवर्त्त देश में रहने वाले सभी जनो को भी 'आर्य' कहा जाता है।

जैसा उपरोक्त कहा गया कि आर्य नाम श्रेष्ठों का हैं अर्थात् संसार में जितने भी मनुष्य रहते हैं उनमें जिनका व्यवहार, आचरण श्रेष्ठ है, विद्यावान हैं, पुरुषार्थी हैं वे ही 'आर्य' कहलाते हैं। इन गुणों से हीन व्यक्ति का मनुष्य जीवन में रहना व्यर्थ है क्योंकि एक उत्तम विद्या एवं आचरण वाला ही इस मनुष्य जीवन को सार्थक कर सकता है। इसलिये कहा जा सकता है कि संसार में आर्य ही जीवन के सभी क्षेत्रों में उत्तम ब्राह्मण, उत्तम क्षत्रिय, उत्तम वैश्य तथा उत्तम शूद्र हो सकता है। राज्य व्यवस्थाएँ हो या समाज की व्यवस्थायें, आर्यों ही की उत्तम हैं क्योंकि इनके सिद्धान्त वेद के सिद्धान्त हैं जो परमात्मा की ओर से आदेशित हैं उनमें कहीं पर भी लेशमात्र त्रुटि नहीं हो सकती।

यदि हम इतिहास पर दृष्टिपात करें तो ज्ञान होता है कि सृष्टि के आरम्भ में आर्यों ने सार्वभौमिक राज किया है, चक्रवर्ती राज्य किया है उसका कारण आर्यों के उत्तम सिद्धान्त रहे हैं। जब से वेद के सिद्धान्तों को छोड़ा या इनके विरुद्ध आचरण किया है इनके राज्य भी नष्ट-भ्रष्ट हुये हैं और यही कारण है कि जब तक हम इन सिद्धान्तों को धारण नहीं कर पायेंगे तब तक हम अपनी पुरानी भव्यता को प्राप्त नहीं कर पायेगें। आर्यों का भविष्य उनके पुरुषार्थ पर, उनके आचरण पर निर्भर है जैसे-जैसे हम आर्य जन आर्य सिद्धान्तों को धारण करते जायेगे निश्चित है कि हमारा भविष्य उज्जवल होता जायेगा। अत: यह सत्य है कि जब हम नाम से नहीं, कर्म से आर्य होंगे तभी अपने पुराने वैभव को प्राप्त कर पायेंगे। इति।।

वैदिक वर्ण व्यवस्था

- आर्य राजेश, फरीदाबाद

आज संसार में यह मान्यता फैली हैं कि मानव समाज को चार वर्णों में विभाजित करके ऊँच-नीच आदि भेदभाव का कार्य वेद ने किया है। इसका आधार यजुर्वेद के **'पुरुष सूक्त'** वेद में प्रक्षेप है। परन्तु न तो ईश्वर भेदभाव करता है और न ही वेद में प्रक्षेप हो सकता है। वस्तुत: कुछ अल्पबुद्धि और स्वार्थी लोगों ने इस मन्त्र का अर्थ अशुद्ध किया है और कुछ धूर्त लोगों ने इस अशुद्ध अर्थ का प्रचार समाज के विघटन के लिए भरपूर किया है। आइए देखते हैं-

ओ३म् ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्य: कृत:।
ऊरु तदस्य यद्वैश्य: पद्भ्या:शूद्रोऽजायत॥

-यजु. 31/3, ऋ.मं 10 सूक्त 90 मन्त्र 12

अर्थात् ब्राह्मण इसका मुख है, क्षत्रिय इसकी भुजाएं हैं, वैश्य इसका उरु (अर्थात् उदर से लेकर जंघा तक का भाग) है और शूद्र इसके पाद (पैर) हैं।

अब प्रश्न है कि किसका मुख, किसकी भुजाएं इत्यादि? उत्तर है- **पुरुष का।** पुरुष कौन, किसको पुरुष कहा है? पुरुष कहते हैं- सृष्टि में पूरित (व्याप्त) चेतना को (ईश्वर), शरीर में पूरित चेतना को (जीव), और समाज में पूरित चेतना को। मनुष्य एकांकी रहने वाला प्राणी नहीं है, यह समाज में रहता है। प्रश्न उठता है- समाज किसे कहते हैं? उत्तर है- **'समं अजन्ति जना: यस्मिन् स समाज:।'** अर्थात् सम्यक् गति करने वाले मनुष्य समुदाय का नाम **'समाज'** है।

समाज में प्रत्येक व्यक्ति के लिए कर्तव्य और अधिकार निर्धारित रहते हैं। इसी का नाम समाज व्यवस्था हैं।

मन्त्र में 'पुरुष' समाज को ही कहा गया है। अब प्रश्न उठता है कि मन्त्र में ऐसा क्यों कहा, क्या आवश्यकता थी? इसके समाधान के लिए देखना होगा कि क्या प्रकरण चल रहा है? इसके लिए पूर्व मन्त्र देखना पडेगा:-

यत् पुरुषं व्यदधु: कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरु पादा उच्येते॥ -यजु. ३१/१०

इस मन्त्र में प्रश्न किया है कि इस (समाज रूप) पुरुष का मुख क्या हुआ, बाहू कौन बनाए गए, इसका (उदर) उरु कौन हुए और कौन इसके पाद (पैर) कहें जाते हैं?

उपर्युक्त मन्त्रद्वय की आलंकारिक प्रश्नोत्तरी से स्पष्ट है कि जिस प्रकार मानव शरीर के धर्म, उसकी स्थिति और समस्त क्रियाएं मुख आदि चार प्रकार के अंगों के संघटित आधार पर सिद्ध होतीं और चलती हैं, इसी प्रकार समाज रूपी शरीर के धर्म, उसकी स्थिति, समस्त क्रियाएं इन्हीं मुखादि के प्रतिनिधि भूत ब्राह्मणादि चार (वर्णों) अंगों के संघटित आधार पर सिद्ध होती और चलती हैं। इस विभाजन में प्रत्येक अंग की सीमा स्वत: निर्धारित है, जिससे सबका शक्ति सन्तुलन बना रहता है।

यहाँ मुखादि से किसी के उत्पन्न होने का कोई प्रसंग नहीं है। न तो पहले मन्त्र में ही इस प्रकार का प्रश्न उठाया गया है कि किससे कौन उत्पन्न हुआ और न ही दूसरे मन्त्र में इस प्रकार का उत्तर दिया गया है।

यहाँ दो बातें विशेष ध्यान रखने वाली हैं-

1. ब्राह्मणादि की उत्पत्ति उस पुरुष के देहांगों से नहीं, अपितु उसके तत्तद् गुणों से इनकी उपमा दी गई है।
2. भाष्य में आसीत् के पर्याय रूप में **'उत्पन्नों भवति'**,**'उत्पन्नमासीत्'** इत्यादि क्रियापदों का प्रयोग हुआ है। **'आसीत्'**, **'अजायत'** आदि क्रियापदों का अर्थ **'छन्दसि लुड लिट:'** (पा. 3/4/6) इस सूत्र को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। **'पद्भ्यां शूद्रोऽजायत'** मन्त्रांश का **'पद्भ्यां तुल्य: शूद्रोऽजायत'** अर्थात् पाँवों के समान सेवादि परायण शूद्र उत्पन्न हुआ' यह अर्थ सर्वथा संगत है।

वस्तुत: पुरुष को **'ब्रह्म'** अर्थात् ईश्वर मानकर उसके अंगों से ब्राह्मणादि की उत्पत्ति मानने से यह भ्रान्ति हुई है। परन्तु परमेश्वर का तो कोई शरीर ही नहीं है- **'अकायम वृणमस्नाविरम्'** (यजु. 40/8) जिसका शरीर ही नहीं हैं, उसके शरीरांगों से किसी की उत्पत्ति का प्रश्न ही नहीं उठता। यहाँ समाजरूपी शरीर के अंगों का ही उल्लेख है।

वर्ण:- **वृणोति क्रियते वा स वर्ण:।**

जिसका स्वेच्छा से वरण (चुनाव) किया जाता है, उसे वर्ण कहते हैं।

19 मार्च-16 अप्रैल 2022 — चैत्र — ऋतु- वसन्त

सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार	रविवार
23 मार्च बलिदान दिवस		चैत्र शुक्ल प्रतिपदा नवसँवत्सर प्रारम्भ आर्य समाज स्थापना दिवस 2 अप्रैल		श्रीरामचन्द्र जयन्ती चैत्र शुक्ल नवमी 10 अप्रैल	हस्त कृष्ण प्रतिपदा 19 मार्च	चित्रा कृष्ण द्वितीया 20 मार्च
स्वाति कृष्ण तृतीया 21 मार्च	विशाखा कृष्ण चतुर्थी/ पंचमी 22 मार्च	अनुराधा कृष्ण षष्ठी 23 मार्च	ज्येष्ठा कृष्ण सप्तमी 24 मार्च	मूल कृष्ण अष्टमी 25 मार्च	पूर्वाषाढ़ा कृष्ण नवमी 26 मार्च	उत्तराषाढ़ा कृष्ण दशमी 27 मार्च
श्रवण कृष्ण एकादशी 28 मार्च	धनिष्ठा कृष्ण द्वादशी 29 मार्च	शतभिषा कृष्ण त्रयोदशी 30 मार्च	पूर्वाभाद्रपदा कृष्ण चतुर्दशी 31 मार्च	उत्तराभाद्रपदा कृष्ण अमावस्या 1 अप्रैल	रेवती शुक्ल प्रतिपदा 2 अप्रैल	अश्विनी शुक्ल द्वितीया 3 अप्रैल
भरणी शुक्ल तृतीया 4 अप्रैल	कृत्तिका शुक्ल चतुर्थी 5 अप्रैल	रोहिणी शुक्ल पंचमी 6 अप्रैल	मृगाशिरा शुक्ल षष्ठी 7 अप्रैल	आर्द्रा शुक्ल सप्तमी 8 अप्रैल	पुनर्वसु शुक्ल अष्टमी 9 अप्रैल	पुष्य शुक्ल नवमी 10 अप्रैल
पुष्य शुक्ल दशमी 11 अप्रैल	आश्लेषा शुक्ल एकादशी 12 अप्रैल	मघा शुक्ल द्वादशी 13 अप्रैल	पू॰ फाल्गुनी शुक्ल त्रयोदशी 14 अप्रैल	उ॰ फाल्गुनी शुक्ल चतुर्दशी 15 अप्रैल	हस्त शुक्ल पूर्णिमा/ प्रतिपदा 16 अप्रैल	

17 अप्रैल- 16 मई 2022 — वैशाख — ऋतु- ग्रीष्म

सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार	रविवार
विशाखा शुक्ल पूर्णिमा 16 मई						चित्रा/स्वाति कृष्ण प्रतिपदा 17 अप्रैल
विशाखा कृष्ण द्वितीया 18 अप्रैल	अनुराधा कृष्ण तृतीया 19 अप्रैल	ज्येष्ठा कृष्ण चतुर्थी 20 अप्रैल	मूल कृष्ण पंचमी 21 अप्रैल	पूर्वाषाढ़ा कृष्ण षष्ठी 22 अप्रैल	उत्तराषाढ़ा कृष्ण सप्तमी/ अष्टमी 23 अप्रैल	श्रवण कृष्ण नवमी 24 अप्रैल
धनिष्ठा कृष्ण दशमी 25 अप्रैल	शतभिषा कृष्ण एकादशी 26 अप्रैल	पूर्वाभाद्रपदा कृष्ण द्वादशी 27 अप्रैल	उत्तराभाद्रपदा कृष्ण त्रयोदशी 28 अप्रैल	रेवती कृष्ण चतुर्दशी 29 अप्रैल	अश्विनी कृष्ण अमावस्या 30 अप्रैल	भरणी शुक्ल प्रतिपदा 1 मई
कृत्तिका शुक्ल द्वितीया 2 मई	रोहिणी शुक्ल तृतीया 3 मई	मृगशिरा शुक्ल तृतीया 4 मई	मृगशिरा शुक्ल चतुर्थी 5 मई	आर्द्रा शुक्ल पंचमी 6 मई	पुनर्वसु शुक्ल षष्ठी 7 मई	पुष्य शुक्ल सप्तमी 8 मई
आश्लेषा शुक्ल अष्टमी 9 मई	मघा शुक्ल नवमी 10 मई	पू॰ फाल्गुनी शुक्ल दशमी 11 मई	उ॰ फाल्गुनी शुक्ल एकादशी 12 मई	हस्त शुक्ल द्वादशी 13 मई	चित्रा शुक्ल त्रयोदशी 14 मई	स्वाति शुक्ल चतुर्दशी 15 मई

दलितोद्धार आन्दोलन

–आर्य आनन्द स्वरूप, मुजफ्फरनगर

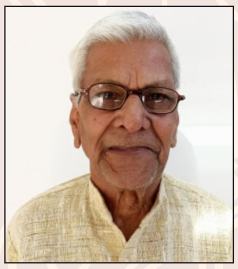

दलित समाज के कष्टों के कारण और निवारण के लिए किये जाने वाले प्रयासों के विषय में जो कार्य किये जा रहे हैं वैसे भी समाचार पत्रों और दूरदर्शन के द्वारा प्रसारित प्रचारित होते रहते हैं। प्रगति हो भी रही है। मैंने स्वतंत्रता के पहले और बाद के प्रारम्भिक वातावरण को देखा है।

किसी पेड़ की जड़ को सीचंने के विरुद्ध यदि पेड़ के फूल-पत्तों पर पानी डाला जाये तो सभी जानते है कि पेड़ सूखने को कोई रोक नहीं सकता। यही स्थित दलितोद्धार की है। इसके लिए बहुत से कानून, संशोधन किये जाते रहे और सम्बन्धित वर्ग को आर्थिक-समाजिक शैक्षिक सुविधायें भी प्रदान की गई परन्तु मूल की ओर ध्यान नहीं गया है जिसके कारण समस्या छोटे रूप में ही सही, खड़ी हुई है। पेड़ का मुख्य अंश जड़ होती है। जैसे पेड़ को सुरक्षित रखने में उसकी जड़ को सींचना होता है। ऐसे ही पेड़ को काटने में भी उसकी जड़ पर ही प्रहार किया जाता है, टहनियाँ और पत्तियाँ काटने से पेड़ नष्ट नहीं होता।

आर्ष साहित्य में समाज के कार्य के दृष्टिकोण से चार भागों में बाटा गया है। और ये भाग जन्म से नहीं अपितु कर्मानुसार किये गये हैं। मनुस्मृति में इन भागों के कार्य को विस्तृत रूप से स्पष्ट किया गया है।

आज भी किसी कार्यालय में एक सबसे बड़ा अधिकारी होता है जिसे अधिशासी अधिकारी, प्रबंधक, निर्देशक अथवा अन्य नाम से पुकारा जाता है। फिर होता है लिपिक और अन्त में हैल्पर, सहायक अथवा चपरासी आदि नाम वाले। ये सब योग्यतानुसार ही होते हैं। इनमें किसी पर आगे बढ़ने की पाबंदी नहीं होती। बहुत दृष्टान्त हैं कि चपरासी तरक्की कर ऊपर उठ गया और ऊपर वाले अपने कारनामों के कारण नीचे भी खिसेके। इसमें जाति-भेद भाव नहीं होता। परन्तु ऐसा तो नहीं ही होता कि अधिकारी का बेटा बिना योग्यता के अधिकारी ही बने और चपरासी का बेटा योग्य होने पर भी ऊंचे पद पर न बैठे। ठीक यही स्थिति प्रारम्भिक समय में समाज के गठन के समय रखी गई थी।

बहुत से ऐसे उदाहरण हैं जब ब्राह्मण कुल में पैदा हुआ अपने नीच कर्मो के कारण, राक्षस, डाकू, लुटेरा अथवा अपने नीच कर्म से नीचे न लुड़का हो। रावण इसका सबसे बड़ा उदाहरण कहलाया जो तथा कथित शुद्र वर्ण से भी बहुत नीचा था। वास्तव में वर्ण तो आर्यो के निर्धारित किये गये थे और राक्षस वर्ण तो आर्यत्व से भी निम्न था, वह तो आर्य भी न रहा। अजामिला भी इसी प्रकार ब्राह्मण होते हुए भी अपने कर्मो से नीचे गिरा। समय समय पर समाज ने बहुत से लोगों को कर्मोनुसार नीचे पटका है जाति बाहर किया। इसी प्रकार बहुत से उदाहरण साहित्य और समाज में उपस्थित हैं।

जातिगत उत्थान के भी असंख्य उदाहरण है। कबीरदास एक जुलाहे के घर पैदा होकर सन्त कहलाये, पूज्य बने। महात्मा रैदास भी चतुर्थ वर्ण से प्रथम वर्ण से भी ऊपर सन्त की पदवी पर विराजे। हम देखते हैं कि ज्ञान पूर्वक कर्म ही इस वर्ण व्यवस्था का कारण था और अभी भी है। अत: ज्ञान ही इस समस्या की जड़ है। यदि हम ज्ञान प्राप्त कर उसी के अनुसार कर्म करें तो ये भेद-भाव स्वयं विरोहित हो जायेंगे। सवाल है ज्ञान कौन सा, कहाँ से प्राप्त हो। वेद ईश्वरीय ज्ञान है और इस के जानने पर मनुष्य आर्य कहलाने लगता है और आर्य केवल आर्य है उसमें भेद-भावना नहीं रहती। आर्य श्रेष्ठ को कहते हैं और वेद ज्ञान के बाद आर्य अर्थात् श्रेष्ठ बन कर सभी एक ही हो जाते हैं। ऐसा अनेकों उदाहरण हैं कि वैदिक ज्ञान के बाद मनुष्य की जन्म वर्ण समाप्त होता है। स्वामी सत्यपति जी जिनका लम्बी आयु में अभी अभी निर्धन हुआ है, मुस्लमान थे। वेद ज्ञान प्राप्त कर संन्यासी हुये। श्री पं महेन्द्र पाल भी मुसलमान घर में पैदा होकर आज आर्य पंडित हैं और सब जगह आदर-सम्मान प्राप्त करते हुये चारों वर्णों के शीर्ष पर है। आनन्द सुमन छतारी नवाब जैसे अनेकों उदाहरण समाज के सम्मुख उपस्थित हैं, अभी अभी स्वर्गवासी हुये, श्री कस्तूरसिंह स्नेही बाल्मीकि समाज से जन्म लेकर वैदिक ज्ञान प्राप्त कर सम्मानित आर्य बने।

निष्कर्ष है कि इस समस्या का मूल अज्ञान है। और ज्ञान ही उसके निवारण का उपाय। ज्ञान में वेद ईश्वरीय ज्ञान होने के नाते सर्वोत्तम और वांछनीय है।

इस ज्ञान को प्रसारित-प्रचारित करने के लिए ही आर्य समाज का गठन हुआ था। और इसके अन्तर्गत राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा दो-दो दिन की निशुल्क कक्षायें लगाकर स्त्री-पुरुषों को वैदिक ज्ञान दिलाने का प्रयत्न कर रही है। जिसके अन्तर्गत लगभग तीन लाख स्त्री पुरुषों को कुछ वर्षो में वैदिक ज्ञान द्वारा आर्यत्व प्रदान किया जा चुका है।

राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा द्वारा आयोजित दो दिवसीय सत्रों व सभा से सम्बन्धित नवीन जानकारी सभा की बेवसाईट- **www.aryanirmatrisabha.com** पर उपलब्ध है। अत: आप वहाँ से जानकारी ले सकते हैं। यह पत्रिका भी प्रत्येक मास दिनांक 10 को सभा की बेवसाईट पर डाल दी जाती है अत: पत्रिका को पढ़ने के लिए साईट के लिंक- **www.aryanirmatrisabha.com/हिन्दी में पत्रिका** पर जाएं।

संध्या काल

चैत्र-मास, वसन्त-ऋतु, कलि-5122, वि. 2078	चैत्र-मास, वसन्त-ऋतु, कलि-5122, वि. 2078
(19 मार्च 2022 से 16 अप्रैल 2022)	(17 अप्रैल 2022 से 16 मई 2022)
प्रात: काल: 5 बजकर 30 मिनट से (5.30 A.M.)	प्रात: काल: 5 बजकर 15 मिनट से (5.15 A.M.)
सांय काल: 7 बजकर 00 मिनट से (7.00 P.M.)	सांय काल: 7 बजकर 15 मिनट से (7.15 P.M.)

गृहस्थ सम्बन्ध : भाग-३२

- आचार्य संजीव आर्य, मु०नगर

पाखण्डी, वेदनिन्दक, नास्तिक अर्थात् जो ईश्वर वेद और धर्म को न मानें, साथ ही पराये पदार्थ हरने अथवा बहकाने में बगुले के समान अतिथि वेशधारी अर्थात् जैसे बगुले भगत वैसे बगुले अतिथि जिन की दृष्टि दूसरे सज्जनों के पदार्थ उनके संसाधन को कैसे हड़पा जाए इसी पर रखती है, ऋषि कहते हैं कि ऐसे लोगों का बचन मात्र से भी सत्कार न करें। क्योंकि सत्कार करने से ये लोग वृद्धि को प्राप्त होकर समाज के लिए अत्यन्त दु:खदायी होते हैं।

जहाँ गृहस्थी के लिए अतिथि और अथिभेष के व्यवहार में सावधानी के लिए कहा है। वहीं अतिथि को क्या सावधानी रखनी चाहिए उसे भी सचेत किया है कि-

दशसूनासमं चक्रं दशचक्रसमो ध्वज:।
दशध्वजसमो वेषो दशवेषसमो नृप:।।
न लोकवृत्तं वर्तेत वृत्ति हेतो: कथंचन।
अजिह्मामशठां शुद्धां जीवेद् ब्राह्मणजीविकाम्।।
सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत् सदा।
शिष्याँश्च शिष्याद् धर्मेण वाग्बाहूवरसंयत:।।
परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ।
धर्मं चाप्यसुखोदर्कं लोकविक्रुष्टमेव च।।

अर्थ:- दश हत्या के समान चक्र अर्थात् कुम्हार, गाड़ी से जीविका करनेहारे, दश चक्र के समान ध्वज अर्थात धोबी, मद्य को निकाल बेचनेहारे, दश ध्वज के समान वेष अर्थात् वेश्या, भडुआ भांड, दूसरे की नकल अर्थात् पाषाणमूर्तियों के पूजक (पूजारी) आदि, और दश वेष के समान जो अन्यायकारी राजा होता है, उनके अन्न आदि का ग्रहण अतिथि लोग कभी न करें।

गृहस्थ जीविका के लिये भी कभी शास्त्रविरुद्ध लोकाचार का वर्त्ताव न वर्ते। किन्तु जिसमें किसी प्रकार की कुटिलता मूर्खता मिथ्यापन वा अधर्म न हो, उस वेदोक्त कर्म-सम्बन्धी जीविका को करे।

किन्तु सत्य धर्म आर्य अर्थात् आप्त पुरुषों के व्यवहार और शौच पवित्रता ही में सदा गृहस्थ लोग प्रवृत्त रहें। और सत्यवाणी, भोजनादि के लोभरहित हस्तपादादि की कुचेष्टा छोड़कर धर्म से शिष्यों और सन्तानों को उत्तम शिक्षा सदा किया करें।

यदि बहुतसा धन राज्य और अपनी कामना अधर्म से सिद्ध होती हो, तो भी अधर्म सर्वथा छोड़ देवें । और वेदविरुद्ध धर्माभास जिसके करने से उत्तरकाल में दु:ख और संसार की उन्नति का नाश हो, वैसा नाममात्र धर्म और कर्म कभी न किया करें।

प्रथम विशेष रूप से विचारणीय है यह विषय अपने आप में विवाद का भी है, आखिर ऐसा क्या है जिससे यह कहा कि कुम्हार, गाडी से जीविका करने हारे, धोबी और पुजारी के घर अतिथि कभी भी भोजन न करें। ऋषियों के इस प्रकार के निर्देशों को समझने के लिए सात्विक बुद्धि रखते हुए विचार करना चाहिए। जहाँ तक मैं समझ पा रहा हूँ कुम्हार और गाडी से अथवा चक्र से जीविका करना प्राचीन काल में अत्यन्त कठिन रहा होगा। कुम्हार के लिए तो आज भी कठिन ही है ऐसे में अतिथि सेवा का बोझ उनके ऊपर अतिरिक्त न पडे इसीलिए अतिथियों को इनके यहाँ भोजन का निषेध किया है। सच तो यह है कि कम आय वाले वर्ग के यहाँ जब कोई सम्मानित अतिथि आता है और वह उस पूज्य अतिथि के अनुरूप व्यवस्था/सम्मान न कर सके तो वह स्वयं ही अपमानित अनुभव करेगा अथवा ऋण लेकर व्यय करेगा और दु:ख प्राप्त करता रहेगा। ऋषियों की दृष्टि किसी के प्रति दुर्भावना की नहीं उपकार की ही रहती है। धोबी को भी इसी में गिनना चाहिए। शराब वा किसी भी प्रकार के मदकारी पदार्थों को बेचनेवाले भाँड और वेश्या आदि तो स्पष्ट ही धर्म और समाज के लिए कोढ़ हैं इनके यहाँ आतिथ्य ग्रहण करनेवाला अतिथि समाज के लिए संदिग्ध होकर किसी काम का न रहेगा इसलिए इनके यहाँ जाना निषेध ही ठीक है। पाषाण मूर्तियों के पूजक आदि के भोजन को ग्रहण नहीं करने के लिए कहने के पीछे क्या कारण हो सकता है? ध्यान से देखा जाय तो पुजारी के पास आने वाला धन या तो मूर्ति पर चढाया हुआ है अथवा स्वर्गादि के लोभ वा संकटों को हटवाने की मजबूरी में दिया हुआ धन ही होता है। यह सभी प्रकार का धन एक प्रकार का धोखा ही है। मूर्ति पर ईश्वर के लिए चढाया गया किन्तु प्रयोग पुजारी, उसका परिवार और उसके अतिथियों आदि ने किया। लोभ अथवा भ्रम में डालकर लिया गया धन तो सीधे लूट से आया हुआ ही है। अन्यायकारी राजा के यहाँ यदि संन्यासी और सम्मानित अतिथि जायेंगे तो उससे राजा की प्रतिष्ठा बढेगी साथ ही अतिथि लोग उस राजा का अन्न खाकर उसकी निन्दा और सत्य सिद्धांतों का प्रतिपादन भी नहीं कर सकेंगे। उपरोक्त सभी कारणों से जो गिनाए गये उनके यहाँ और साथ ही जिन और पर भी यह प्रतिबन्ध लागु हो सकें उनके यहाँ अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिए।

गृहस्थों को योग्य है कि वे आजीविका के लिए भी वेदविरुद्ध व्यवहार ना करें। साथ ही ऐसा व्यवहार न करें जिसमें कुटिलता, मूर्खता, मिथ्यापन और अधर्म किंचित मात्र भी होता हो। ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना मन्त्रों में भी कुटिलता युक्त पापरूप कर्मों से छूटने के लिए प्रार्थना की गई है, क्योंकि कुटिलता जब हमारे चरित्र या व्यवहार का भाग हो जाती है तब अधर्माचरण ही पथ बन जाता है। मूर्खता की आशा आर्यों से तो हम नहीं कर सकते हैं। सत्य तो आर्यों के लिए धर्म ही है। धर्म जीवन से भी अधिक महत्वपूर्ण है। गृहस्थ इसका पालन करें और सभी अतिथि इस आशय का उपदेश अवश्य करें।

अतिथि के रूप में मुख्यत: समाज में संन्यासी ही प्रतिष्ठित होता है अत: जो सद्गृहस्थ विद्वान और ब्रह्मचारी आदि आथित्य ग्रहण करें उनका व्यवहार भी कम से कम उस काल में संन्यासी के तुल्य ही होना चाहिए। ऋषियों की दृढतर इच्छा होती है कि सभी गृहस्थों का व्यवहार सत्य धर्म आर्योचित अर्थात् आप्त पुरुषों के सदृश होना

शेष अगले पृष्ठ पर ....

पिछले पृष्ठ का शेष .... चाहिए। श्रीरामचन्द्रादि आप्त पुरुषों की अत्यधिक प्रतिष्ठा भारतीय समाज में इसी लिए है क्योंकि उन्होने अपने जीवन में ऋषि मन्तव्यों का पालन किया है। उपरोक्त व्यवहार गृहस्थों में तभी स्थिर होता है जब अतिथि अर्थात् संन्यासी अथवा संन्यासी वत प्रचार करने वाले आर्य उपदेश गण भोजन वस्त्र अथवा दान दक्षिणा के लोभ में असत्य और अधर्म का उपदेश कदापि न करें अपितु सत्यभाषणादि युक्त वेदाज्ञा पालन की प्रेरणा शिष्यों और सन्तानों को अवश्य करें। उपदेशक यदि लोभ में पडेंगे तो कभी भी सत्योपदेश नहीं कर पायेंगे। इस कारण ही उपदेष्टाओं और उनका अनुकरण अनुपालन करने वाले गृहस्थों को चाहे असंख्य धन मिले और चाहे इससे भी बढकर राज्य भी क्यों न प्राप्त होता हो अथवा अपनी कोई बहुत प्रतीक्षित कामना सिद्ध होती हो तब भी वेद विरुद्ध अथवा वह आचरण न करे जो वेद विरुद्ध होते हुए भी धर्म जैसा दीखता हो।

आजकल बहुत से उपदेशक सिद्धान्तों को जानने वाले और न जानने वाले थोडी सी प्रसिद्धि धन अथवा चमक धमक को देखकर ऋषियों के उपदेशों के विरुद्ध चलने और उपदेश करने लगते हैं। अपनी थोडी सी बुद्धि को अधिक समझने का यह उदाहरण है। आर्य सिद्धान्तों को जानने वाला संन्यासी यदि रामचरित मानस की कथा में नाचने लगे और फिर भी आर्य समाज के लोग उसकी प्रतिष्ठा करें इससे बढकर दुर्भाग्य क्या होगा?

सहज सरल सांख्य-२१

- आचार्य सतीश, दिल्ली

मोक्ष स्थिति में मुक्त आत्मा के लिए प्रकृति अपना कार्य बन्द कर देती है। बन्ध और मोक्ष दोनों प्रकृति पर आधारित हैं जो जगत् का उपादान है फिर चेतन को भी प्रकृति की ही एक अवस्था विशेष क्यों न मान लिया जाए?

मोक्षादि के लिए किए जाने वाले अनुष्ठान केवल वही व्यक्ति कर सकता है जो समर्थ, विद्वान, क्षमाशील हो; दम, शम, तितिक्षा आदि में रूचि रखता हो। ये सब भाव जड़मात्र देह में सम्भव नहीं। इसीलिए चैतन्य के अस्तित्व की उपेक्षा करके देहमात्र से कर्मो के अधिकार का प्रतिपादन करना, प्रामाणिक नहीं है।

आगे सूत्रकार तीन प्रकार के देहों का निर्देश करता है। 1. कर्मदेह- कर्म देह उन वीतराग परमर्षियों का समझना चाहिए जो फल की अभिलाषा छोड़कर केवल कर्म का अनुष्ठान करने में तत्पर रहते हैं सृष्टि के आदि में जो वेद प्रावक्ता ऋषि प्रकट होते हैं वे भी इसी कोटि में आते हैं।

(2) भोग देह- जो केवल अपने पूर्वकृत कर्मों का फल भोगने के लिए उस देह का धारण करते हैं। कुछ केवल पुण्यफल का भोग करते है और कुछ देहों में केवल पापफल भोगा जाता है।

(3) उभय देह- इसमें कर्म और भोग दोनों को प्रस्तुत करने वाले देह सम्मिलित हैं। इसमें राजर्षियों, गृहस्थों आदि को समझना चाहिए, जो पूर्वकृत कर्मो के फलों को भोगते हुए अन्य अनुष्ठानों में भी तत्पर रहते हैं।

यहाँ इतना अवश्य समझें कि कोई ऐसा देहधारी नहीं है जो बिना कोई भी कर्म किए रह सकता हो। जो भोग योनियाँ है वे भी कुछ न कुछ करती रहती है, बिना कर्म के कोई भोग सम्पन्न नहीं हो पाता। जो केवल कर्म देह है वहाँ भी भोग सम्भव है। जैसे वीतराग फल संन्यासी परमर्षियों के लिए भी अन्न-पान आदि की व्यवस्था आवश्यक होती है। इसीलिए यह वर्गीकरण, प्राधान्य की दृष्टि से किया गया है, प्रधान रूप से वह देह जिस लिए प्राप्त है, उसी वर्ग में उसको रख दिया है।

कर्मी आत्मा कर्मानुसार, सुख फलों को भोगकर जब पुन: इन योनियों में आते हैं, उस अन्तरालमार्ग में आत्मा की स्थिति क्या कहलाती है?

उस स्थिति में वे सभी आत्मा अनुशयी कहलाती हैं। उस समय उनको कोई कर्म देह या भोग देह प्राप्त नहीं होता। उनका अपना अभिमानी देह कोई नहीं रहता।

अत: देह नश्वर होने से वह आत्मा का स्वरूप नहीं हो सकता, आत्मा तो कोई नित्य पदार्थ होना चाहिए, जो विभिन्न देहों में सदा एकरूप बना रहता है।

तो फिर बुद्धि को ही ऐसा मान लिया जाए, वह नित्य तत्व रहे, आत्मा को मानने की क्या आवश्यकता है?

बुद्धि प्रकृति का परिणाम है, वह नित्य नहीं। आश्रय विशेष में भी नित्य नहीं चाहे अन्त:करण के रूप में हो चाहे वृतिरूप हो। किसी आश्रय में नित्य और किसी में अनित्य नहीं हो सकती क्योंकि जिस वस्तु का जैसा स्वभाव है वह वैसी ही रहेगी जैसे अग्नि का आश्रयभूत इन्धन कुछ भी हो वह उष्ण ही रहेगी। अत: बुद्धि आत्मा का रूप सम्भव नहीं।

बुद्धि आदि के अस्तित्व के लिए आत्मा का अस्तित्व अवश्यंभावी अपेक्षित रहता है। बुद्धि आदि का अस्तित्व आत्मा के लिए है। बुद्धि प्रकृति का आद्य कार्य है। उसके अनन्तर अहंकार व तन्मात्र आदि जगत् उत्पन्न होता है। यह समस्त कार्य जगत चेतन आत्मा के भोग तथा अपवर्ग की सिद्धि के लिए अस्तित्व में आता है। अत: बुद्धि आदि के आश्रयभूत आत्मा का स्वीकार करना आवश्यक एवं युक्तियुक्त है।

जिस प्रकार औषध आदि के सेवन से हमारे देह आदि के रोग दूर होकर एक अनुकूल अवस्था प्राप्त हो जाती है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसी प्रकार समाधि से प्राप्त होने वाली विशेष अवस्थाओं अर्थात् सिद्धियों की भी उपेक्षा किया जाना ठीक नहीं क्योकि इन अवस्थाओं का योगियों ने साक्षात् अनुभव किया है। ये अनुभव केवल देहाश्रित नहीं हैं, आत्माश्रित हैं। इससे भी आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व प्रकट होता है।

पृथिव्यादि भूत चेतन नहीं है, इनके संघात में भी चेतन का होना सम्भव नहीं। कारण यह है कि भूतों के संघात से चेतन कहाँ से आ जाएगा, जब उनमें प्रत्येक में चैतन्य का अभाव हो, उन सबका मूल उपादान सर्वथा जड़ वस्तु है। जहाँ जिसका मूल उपादान सर्वथा जड़ वस्तु है, जहाँ जिसका मूल अस्तित्व न हो वहाँ वह प्रकट नहीं हो सकता। फलत: चेतन आत्मा का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है, वह अपने साधनों के साथ भोगापवर्ग के लिए प्रकृति के सम्पर्क में आता है। आत्मा इन्हीं के द्वारा मोक्ष का लाभ करता है।

क्रमश ....

आर्योद्देश्यरत्नमाला

प्रणेता - ऋषि दयानन्द
व्याख्याता - आचार्य परमदेव मीमांसक

व्याख्या-किसी क्रिया, गुण और द्रव्य का जो विशेष निमित्त के पूर्व, वर्तमान और पर में न होना है, अभाव कहलाता है। जैसे-कपास से आच्छादन की क्रिया तब तक नहीं हो सकती है, जब तक उसमें संघनन गुण विशेष निमित्त खड्डी, करघा आदि से नहीं आ जाता है। इस गुण के आने पर ही वह वस्त्र बनता है, इस से पूर्व इस कपास को वस्त्र नहीं कह सकते हैं अर्थात् वस्त्र का अभाव है (यह प्राक्-अभाव है)। वस्त्र पुराना होकर चीथड़ों में बदल गया, अब इससे वस्त्र का कार्य नहीं हो सकता है; वस्त्र का अभाव हो गया (यह प्रध्वंस-अभाव है)। प्रकोष्ठ में वस्त्र नहीं है, अर्थात् अन्यत्र है क्योंकि प्रकोष्ठ में वस्त्र का निषेध सत्ता को द्योतित तो कर ही रहा है। अतः प्रकोष्ठ में वस्त्र का अभाव है (यह संसर्ग अभाव है)। वस्त्र घट नहीं है तात्पर्य वस्त्र में घट का अभाव है; इसी तरह घट वस्त्र नहीं है अर्थात् घट में वस्त्र का अभाव है (यह अन्य में अन्य का अभाव है)। जिस की सत्ता ही न हो केवल कथन मात्र हो जैसे-आकाश का फूल, यहाँ सभी कालों में वस्तु का ही अभाव है (यही अत्यन्त अभाव है)। अभाव से भी कारण, कार्य, सत्ता एवं संसर्ग का बोध होकर वस्तु तत्त्व का निश्चय होता है।

९४. **शास्त्र**-जो सत्यविद्याओं के प्रतिपादन से युक्त हो और जिस करके मनुष्यों को सत्य-सत्य शिक्षा हो, उसको **'शास्त्र'** कहते हैं।

व्याख्या-जिन में सत्यविद्याएँ बतलायी गयी हों और जिस में सत्य-सत्य शिक्षा (सिद्धान्त-नियम) वर्णित हो, **शास्त्र** कहलाता है। प्रथम तो 'वेद' शास्त्र है। वेद के अर्थों को प्रकाशित करने वाले, वैदिक सिद्धान्तों एवं उनके प्रयोगगत प्रारूप को बतलाने वाले ग्रन्थ भी 'शास्त्र' हैं। प्राकृतिक रहस्यों को उद्घाटित करने वाले और उनका अनुकरण कर यन्त्रादि का निर्माण करने वाले, मिश्रित पदार्थों का निर्माण करने वाले, सूक्ष्म और विस्तृत गणना करने वाले आदि वैज्ञानिकों, तत्त्ववेत्ताओं और वैदिक विद्वानों के ग्रन्थ भी शास्त्र होते हैं, क्योंकि इनसे भी सत्य का बोध होता है परन्तु ये वैज्ञानिक आदि आप्त होने चाहिये अन्यथा इसमें व्यर्थ, आडम्बरयुक्त, अपूर्ण और परिवर्तनशील परिकल्पनाएं तथा सिद्धान्त ही ज्यादा होंगे और तत्त्व न्यून होंगे ।।

९५. **वेद**-जो ईश्वरोक्त, सत्यविद्याओं से युक्त ऋक् संहितादि चार पुस्तक हैं कि जिन से मनुष्यों को सत्य-सत्य ज्ञान होता है, उस को **'वेद'** कहते हैं।

व्याख्या-चारों 'वेदों' (विद्या धर्मयुक्त ईश्वर- प्रणीत संहिता मन्त्रभाग) को निर्भ्रान्त स्वतःप्रमाण मानता हूँ। वे स्वयं प्रमाणरूप हैं कि जिन के प्रमाण होने में किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा नहीं। जैसे-सूर्य वा प्रदीप अपने स्वरूप के स्वतः प्रकाशक और पृथिव्यादि के भी प्रकाशक होते हैं वैसे चारों वेद हैं। (सत्यार्थप्रकाश-स्वम० प्रकाश)

मनुष्य के लिये संविधान स्वरूप परमेश्वर द्वारा प्रदत्त ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद जो चार सत्य विद्याओं के आकर ग्रन्थ हैं, जिनसे मनुष्यों को सत्य और असत्य, कर्तव्य और अकर्तव्य तथा धर्म और अधर्म आदि का परिज्ञान होता है। ये ही वेद हैं। ईश्वर के सर्वज्ञ होने से ये चारों वेद भ्रान्ति रहित हैं और स्वतः प्रमाणभूत हैं अर्थात् ये बिना परीक्षा किये ही मानने और आचरण में लाये योग्य हैं।

९६. **पुराण**-जो प्राचीन ऐतरेय, शतपथ ब्राह्मणादि ऋषि-मुनिकृत सत्यार्थ पुस्तक हैं, उन्हीं को पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा, नाराशंसी कहते हैं।

व्याख्या-जो ब्रह्मादि के बनाये ऐतरेयादि ब्राह्मण पुस्तक हैं उन्हीं को पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा और नाराशंसी नाम से मानता हूँ, अन्य भागवतादि को नहीं।

(सत्यार्थप्रकाश स्वम० प्रकाश)

ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, साम ब्राह्मण और गोपथ ब्राह्मण को ही पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा और नाराशंसी कहते हैं। वेद का सर्वप्रथम व्याख्यान आचार्य ब्रह्मा ने किया, तदनन्तर इन व्याख्यानों का संकलन और नवीन प्रवचन अन्य ऋषियों एवं मुनियों ने करके ब्राह्मणादि ग्रन्थ बनाये। ये ब्राह्मण ग्रन्थ परतः प्रमाण वाले हैं, इनका प्रमाण वेद के अधीन है, यदि सुदीर्घ काल में आलस्य और अविद्या आदि के कारण इसमें वेद विरुद्ध वचन हो तो वह-वह अंश अप्रामाणिक एवं त्याज्य होगा ।

९७. **उपवेद**-जो आयुर्वेद वैद्यकशास्त्र, जो धनुर्वेद शस्त्रास्त्र विद्या-राजधर्म, जो गान्धर्ववेद गानशास्त्र और अर्थवेद जो शिल्पशास्त्र है; इन चारों को **'उपवेद'** कहते हैं।

व्याख्या-चारों वेदों के एक-एक उपवेद हैं, ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद है जिसमें चिकित्सा सम्बन्धी विवेचन है। इसमें वर्तमान में निघण्टु, चरक और सुश्रुत ग्रन्थ मुख्य हैं। यजुर्वेद का उपवेद धनुर्वेद है, इसमें युद्ध के उपकरणों के निर्माण एवं प्रयोग आदि का विवेचन तथा राजधर्म है; इसमें युद्ध निर्माण सम्बन्धी प्राचीन ग्रन्थ लुप्तप्राय हैं, संकीर्ण विवेचन ही यत्र तत्र रामायण, महाभारत, यन्त्रसर्वस्व, समरांगण सूत्रधार, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि ग्रन्थों में उपलब्ध है। राजधर्म सम्बन्धी विस्तृत विवेचन मनुस्मृति, महाभारत, कौटिल्य अर्थशास्त्र आदि ग्रन्थों में है। सामवेद का उपवेद गन्धर्ववेद है, जिस में गान विद्या है। अथर्ववेद का उपवेद अर्थवेद है, इस को शिल्प शास्त्र भी कहते हैं। जिसमें विमान, तार एवम् अन्य वैज्ञानिक आविष्कारों का वर्णन है; इसके ग्रन्थ भी अनुपलब्ध हैं, यत्र-तत्र पूर्वोक्त यन्त्रसर्वस्वादि ग्रन्थों में ही वर्णन मिलता है। इन्हीं उपवेदों में से विद्याएँ निकाल-निकाल कर प्रायोगिक रूप में वर्णित की गयी थीं, जिनसे भारत लक्षाब्दियों तक शिष्ट, समृद्ध और महान् पराक्रमशाली बना रहा।।

९८. **वेदांग**-जो शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष आर्ष सनातन शास्त्र हैं, इनको **'वेदांग'** कहते हैं।

व्याख्या-वेदों के अर्थ को जानने एवं लौकिक व्यवहारों के निष्पादन हेतु इन ग्रन्थों में शिक्षा -पाणिनि मुनि कृत; कल्प-श्रौत, गृह्य, शुल्ब और धर्मसूत्र, इन में वेदों के अनुसार पृथक्-पृथक् श्रौतसूत्रादि भी हैं, जैसे-आश्वलायन श्रौतसूत्र (ऋग्वेद), कात्यायन श्रौतसूत्र (यजुर्वेद) आदि; व्याकरण-पाणिनिमुनि कृत अष्टाध्यायी, धातुपाठ, उणादिपाठ, गणपाठ, लिङ्गानुशासन एवं पतञ्जलि मुनिकृत महाभाष्य; निरुक्त-यास्कमुनिकृत; छन्द-पिङ्गलाचार्यकृत; ज्योतिष-सूर्यसिद्धान्त आदि ग्रन्थ **वेदांग** कहलाते हैं।

९९. **उपांग**-जो ऋषि-मुनिकृत मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त छः शास्त्र हैं, इनको **'उपांग'** कहते हैं।

क्रमश ....

द्विदिवसीय आर्य/आर्या प्रशिक्षण के बाद सत्रार्थियों के अनुभव

मैं इस आर्य समाज में आने से पहले कुछ भी मुझे ज्ञात नहीं था कि मैं क्या कर रहा हूँ? और क्या करूँगा? मुझे देश के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं। मुझे यह भी नहीं पता था कि मेरा धर्म क्या, मेरा राष्ट्र क्या है। मेरी मातृ भूमि कैसी है, कहाँ तक है? लेकिन इस आर्य समाज में आने के बाद मुझे पता चला कि मैं कितने अन्धकार में जी रहा था। यहाँ आने से पता चला कि मेरा राष्ट्र क्या है? मेरा देश क्या है? ईश्वर के बारे में मुझे पता चला। मैं इस दो दिन के कैम्प में बहुत कुछ सीख पाया, दुर्भाग्य है मेरा कि मैं इससे वंचित क्यों रहा।

नाम : धर्मेन्द्र कुमार, आयु : १८ वर्ष, योग्यता : १२ वीं, कार्य : विद्यार्थी, पता : हरिनगर, पानीपत, हरियाणा।

आर्य/आर्या प्रशिक्षण सत्र पूर्ण रूप से जीवन की हर कसौटी पर खरा उतरने वाला सत्र है। जिसका मुख्य उद्देश्य मानवता का कल्याण करना और अपने खोए हुए अस्तित्व को दौबारा लौटाना है। इस सत्र से हमें अपने खोए अस्तित्व और हमें अपनी पहचान के बारे में मालूम हुआ। जो हमारे जीवन में एक प्रेरणा का स्रोत है। हमें अपने खोए हुए अस्तित्व को दौबारा से प्राप्त करने का अवसर मिला। और हमें इसे भविष्य में बनाए रखने के लिए प्रतिद्ध है और बाह्य आडम्बरों से दूर रहना और आपसी भाईचरा को प्रोत्साहन देना है।

नाम : बिजेन्द्र कुमार, आयु : ४४ वर्ष, योग्यता : स्नातकोत्तर, कार्य : शिक्षक, पता : बडौली, पानीपत, हरियाणा।

आओ यज्ञ करें!

अमावस्या	01 अप्रैल	दिन-शुक्रवार	मास-चैत्र	ऋतु-वसन्त	नक्षत्र-उत्तराभाद्रपदा
पूर्णिमा	16 अप्रैल	दिन-शनिवार	मास-चैत्र	ऋतु-वसन्त	नक्षत्र-हस्त
अमावस्या	30 अप्रैल	दिन-शनिवार	मास-वैशाख	ऋतु-ग्रीष्म	नक्षत्र-अश्विनी
पूर्णिमा	16 मई	दिन-सोमवार	मास-वैशाख	ऋतु-ग्रीष्म	नक्षत्र-विशाखा

आर्य निर्माणशाला में विभिन्न स्थानों पर निर्मात्री सभा के आचार्यों द्वारा आर्य व आर्या निर्माण

स्वामी व प्रकाशक आचार्य हनुमत्प्रसाद द्वारा सांगोपांगवेद विद्यापीठ, आर्ष गुरुकुल, टटेसर-जौन्ती, दिल्ली-81 से प्रकाशित

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् - समाचार पत्र मे छपे लेखों तथा विचारों से सम्पादक का पूर्णतया सहमत होना आवश्यक नहीं है। क्योंकि अनवधानतावश त्रुटि एवं मतभिन्न होना सम्भव है। सभी न्यायिक विवाद दिल्ली में निपटाये जाएंगे।